इकाई 6 कुछ महत्त्वपूर्ण संवादों का परिचय

इकाई की रूपरेखा

6.0 उद्देश्य

6.1 प्रस्तावना

6.2 संवाद का अर्थ

6.3 संवाद में प्रमुख तत्त्व तथा सीमाएँ

6.4 महत्त्वपूर्ण संवाद

- 6.4.1 सरमा–पणि–संवाद
- 6.4.2 यम–यमी संवाद
- 6.4.3 यम–नचिकेता संवाद
- 6.4.4 व्याघ्र गोमायु संवाद
- 6.4.5 याज्ञवल्क्य मैत्रयी संवाद
- 6.4.6 नागसेन मीनांडर संवाद
- 6.4.7 आदिगुरू शंकराचार्य तथा उभयभारती संवाद

6.5 सारांश

6.6 पारिभाषिक शब्दावली

6.7 सन्दर्भग्रन्थ

6.8 बोध प्रश्न

6.0 उद्देश्य

प्रस्तुत ईकाई को पढ़ने के बाद आप–

- कुछ प्रमुख संवादों से परिचित हो सकेंगे।
- उन संवादों में निहित भारतीय वादपरम्परा के तत्त्वों को जान सकेगे।
- संवादों में निहित नितितत्त्व को ग्रहण कर सकेंगे।
- भारत में संवादपरम्परा के व्यापक और प्राचीन स्रोतों से परिचित हो सकेंगे।

6.1 प्रस्तावना

पूर्व की ईकाईयों में आप भारत में वादपरम्परा के स्वरूप और महत्व तथा वाद–संवाद के नियमों और उन नियमों की संरचना से आप परिचित हो चुके हैं। अब हम आपको भारत में प्राचीन कुछ महत्वपूर्ण संवादों से परिचित कराने जा रहे हैं।

वैदिक परम्परा के अधिकांश संवाद जिज्ञासा पर आधारित है। यह जिज्ञासा भी तीन प्रकार की होती है–

1. **साधारण जिज्ञासा** : उषस्ति एवं महावत संवाद, हंसों के संवाद, जानश्रुति पौत्रायण तथा सेवक संवाद इत्यादि।
2. **विशेष जिज्ञासा** : नारद सनत्कुमार संवाद, श्वेतकेतु तथा आरूणि संवाद, जनक याज्ञवल्क्य तथा याज्ञवल्क्यमैत्रयी संवाद इत्यादि।

3. **पूर्वाग्रह पूर्वक जिज्ञासा :** याज्ञवल्क्य से अश्वल, आर्तभाग, भुज्यु लाह्यायनि, उषस्त, कहोल, गार्गी, आरूणि एवं विदग्ध शाकल्य संवाद इत्यादि।

इस प्रकार भारतीय परम्परा में कतिपय संवाद विशेष है, जहाँ किसी सत्य का अन्वेषण अथवा किसी देवता विशेष का निर्देश किया जाता है।

6.2 संवाद का अर्थ

सवांद को स्पष्ट करने के लिये इसके सामान्य अर्थ पर विचार करना अनिवार्य प्रतीत होता है। लोक व्यवहार से प्रतीत होता है कि कथन चार प्रकार का है–

1. विशेष कथन
2. साधारण कथन
3. निकृष्ट कथन
4. संवाद एवं वार्तालाप के मध्यवर्ती कथन

इन कथनों का गहन अध्ययन करने पर विशेष कथन को 'संवाद', साधारण कथन को 'वार्तालाप' अथवा 'वार्ता' और निष्कृट कथन अथवा अनुचित कथन को 'विवाद' नाम से अभिहित किया जा सकता है। इन तीनों की अपनी–अपनी सीमाएँ है।

संवाद शब्द 'सम' उपसर्ग पूर्वक 'वद्' धातु से 'घञ्' प्रत्यय लगाने पर निष्पन्न होता है। सम का अर्थ के साथ मिलकर, वाद का अर्थ बोलना अथवा विचार विमर्श करना। इस प्रकार संवाद का अथ हुआ किसी के साथ मिलकर बोलना अथवा विचार विमर्श करना।

संवाद से अभिप्राय एक विशेष प्रकार की बातचीत से है जिसके अन्तर्गत किसी विशेष विषय पर विचार विमर्श किया जाता है। यह विचार विमर्श धार्मिक, राजनैतिक, दार्शनिक अथवा आर्थिक किसी भी विषय पर हो सकता है। इसमें विषय के किसी निष्कर्ष पर्यन्त पहुँचना भी अनिवार्य है।

वार्तालाप में विषय गम्भीर नहीं होता और न ही प्रसंग से स्थिरता होती है। इसमें किसी विषय के निष्कर्ष पर्यन्त पहुँचना भी अनिवार्य नहीं है। इसमें विषय बिखराव होता है और भावुकता भी होती है।

विवाद संवाद से पूर्णत विपरीत है। यह वाद् से 'वि' उपसर्ग लगने पर बनता है। 'वि' उपसर्ग पृथक् करना अर्थ को देता है। इसमें विषय का उचित निष्कर्ष निकलने के स्थान पर विषय प्रायः विस्मृत सा हो जाता है।

संवाद एवं वार्तालाप के मध्यवर्ती कथन में एक विषय पर अनेक पात्र अपने–अपने अभिमत प्रकट करते हैं परन्तु निष्कर्ष निकलने के स्थान पर विषय प्रायः विस्मृत सा हो जाता है।

संवाद एवं वार्तालाप के मध्यवर्ती कथन में एक विषय पर अनेक पात्र अपने–अपने अभिमत प्रकट करते हैं परन्तु निष्कर्ष नहीं, न ही इसमें कोई विवाद की स्थिति उत्पन्न होती है।

संवाद के भी तीन प्रकार है–

1. प्रत्यक्ष संवाद

2. परोक्ष संवाद
3. आङ्गिक अभिनय द्वारा संवाद

1. प्रत्यक्ष संवाद

इसमें पात्रों की प्रत्यक्ष उपस्थिति होती है। प्रत्यक्ष संवाद दो प्रकार का होता है–

I. पूर्व निर्धारित (विषय, समय एवं स्थानानुसार संवाद)

II. परिस्थिति के अनुसार स्वतः संवाद

2. परोक्ष संवाद

इसमें पात्र मूर्त रूप में प्रत्यक्ष नहीं होते हैं परन्तु वक्ता किसी न किसी रूप में अन्य पात्र की कल्पना कर लेता है। इसमें बैखरी वाक् की अपेक्षा मध्यमा वाक् अधिक कार्य करती है। यह संवाद भी दो प्रकार का होता है–

I. स्वगत संवाद

II. मौनगत संवाद

स्वगत भाषण में व्यक्ति अपने साथ ही बोलता है। इसमें वह सुख दुःख इत्यादि का स्वंय ही अनुभव करता है। सब कुछ उस तक ही सीमित रहता है परन्तु मौनगत संवाद में व्यक्ति जिसका चिन्तन करता है वह व्यक्ति उसका उत्तर भी देती है जो मौनरूप में ही होता है। इसे दो पात्रों का आन्तरिक संवाद कहा जा सकता है।

3. आङ्गिक अभिनय द्वारा संवाद

आङ्गिक अभिनय कई बार संवाद से भी अधिक प्रभावशाली होता है। व्यक्ति जो बात बोल करके नहीं कह पाता है वह आङ्गिक अभिनय द्वारा शीघ्रता से अभिव्यक्त कर देता है।

6.3 संवाद में प्रमुख तत्त्व तथा सीमाएँ

संवाद के अर्थ एवं स्वरूप को जानने के बाद यह जानना आवश्यक है कि संवाद के वे कौन–कौन से तत्त्व हैं जो संवाद को अपनी सीमा में बांध करके उसके वास्तविक स्वरूप का निर्धारण करते हैं।

चूंकि संवाद मैत्रीपूर्ण एवं शांतिपूर्ण वातावरण में विचार विनिमय है। संवाद की पहली कड़ी है–वक्ता, श्रोता एवं विषय। संवाद में इन तीनों का ही महत्त्वपूर्ण योगदान है। दूसरी महत्त्वपूर्ण पक्ष में संवाद में शिष्टतापूर्ण व्यवहार की अपेक्षा है। अमर्यादित तथा अभद्र व्यवहार वर्जित है। उक्ताहट, पाखण्ड एवं अभिमान दोरंगी चाल वर्जित है। ईर्ष्या, अहंकार एवं क्रोध भाव अनपेक्षित है। संवाद के लिये संवाद कर्त्ताओं के मध्य स्नेह, मैत्रीभाव, सहनशील, दयाुल, विश्वास एवं आशायुक्त भाव अपेक्षित है। संवाद के प्रमुख तत्त्व निम्नवत है इनका भी अवलोकन करिये–

उदारता : उदारता से अभिप्राय संकुचित तथा सन्देहपूर्ण विचारों का अभाव है। संवाद कभी भी सन्देह की स्थिति में नहीं होनी चाहिए। संवाद में प्रत्येक पात्र अन्य पात्र के विचारों का उदारता एवं सहानुभूतिपूर्वक श्रवण करें एवं अपने विचारों का कथन करे परन्तु विचारों की उदारता की भी सीमा है। यह नही मान्य है कि जो भी किसी के मन में आये वह बोलता रहे।

जिज्ञासा : उचित संवाद जिज्ञासा पर आधारित होता है यदि पात्रों में कुछ नया जानने की इच्छा होगी तभी वे अपने सन्देहों का निराकरण करके कुछ नया सीख सकते हैं। जिज्ञासा तीन प्रकार की हो सकती है– साधारण जिज्ञासा, विशेष जिज्ञासा और पूर्वाग्रहपूर्वक जिज्ञासा। साधारण तथा विशेष जिज्ञासा प्रायः प्रश्न के रूप में होता है तथा जिज्ञासु विनम्रता एवं आश्चर्यपूर्वक विषय के बारे में जिज्ञासा करता है।

सम्मानपूर्वक विचार विनिमय : संवाद का प्रत्येक पात्र अपने विचारों से अन्य को अवगत कराये तथा अन्य पात्रों का विचार ग्रहण करें।

संवादात्मक उत्तरदायित्व : संवादात्मक उत्तरदायित्व से यहां अभिप्राय है– प्रश्नोत्तर करने की योग्यता। यह योग्यता वास्तविक होनी चाहिए।

भाषा ज्ञान तथा भाषा साम्य : संवाद में भाग ले रहे पात्रों को भाषा का ज्ञान तथा भाषा की समता का ज्ञान आवश्यक है। कई बार व्यक्ति विद्वान् होते हुए भी भाषा की असमता के कारण अन्य पात्रों की बात को समझने में असमर्थ होता है। फलतः वह अपने विचारों का प्रकटीकरण नहीं कर पाता। इनके अतिरिक्त विषय का ज्ञान, पात्रों में अकृत्रिमता, पक्षपातहीनता, सहयोग आदि अनिवार्य तत्त्व है।

6.4 महत्त्वपूर्ण संवाद

संवादों का बीजतत्त्व वेद में प्राप्त होते हैं। यदि संवादात्मक दृष्टि से वेद का अध्ययन किया जाय तो ऋग्वेद में 88, यजुर्वेद में एक, अथर्ववेद में एक, ऐतरेय ब्राह्मण में 21, शांखायण ब्राह्मण में 4, तैत्तिरीय ब्राह्मण में 6, शतपथ ब्राह्मण में 130, षड्विंश ब्राह्मण में 4, जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण में 18, गोपथ ब्राह्मण में 24 हैं। इनमें से 265 संवाद सफल हैं और 32 संवाद विफल है। इस प्रकार संहित तथा ब्राह्मण में लगभग 297 संवाद उपलब्ध है तथा यदि हम उपनिषदों का संवादात्मक दृष्टि से परीक्षण करें तो ऐतरीय उपनिषद् में 3 संवाद, कौषीतकि उपनिषद् में 5, ईशावास्योपनिषद् में 6, बृहदारण्यकोपनिषद् में 31 संवाद, तैत्तिरीयोपनिषद् में 1, कठोपनिषद् में 6 संवाद, श्वेताश्वतरोपनिषद् में 1, मैत्रायिणी उपनिषद् में 2, केनोपनिषद् में 10, छान्दोग्योपनिषद् में 48, प्रश्नोपनिषद् में 8 एवं मुण्डोपनिषद् में 1 संवाद दृष्टिगोचर होता है। इस प्रकार से इन उपनिषदों में हमें लगभग 129 संवाद प्राप्त होते हैं। वैदिक साहित्य में ही हमें संवादों की एक विशाल राशि प्राप्त होती है। समग्र भारतीय वाङ्मय में अनगिनत संवाद उपलब्ध है।

पात्रों के आधार पर संवादों का संक्षिप्त परिचय

क्रम सं.	संवाद	उदाहरण
1	देवताओं के पारस्परिक संवाद	वैदिक सूक्तों में ही लगभग पच्चीस संवाद प्राप्त होते हैं। जैसे– ऋभुगण–अग्निदेव संवाद, इन्द्र–प्रजापति संवाद आदि।
2	देवों के ऋषियों एवं स्तोतागणों के मध्य संवाद	इन्द्र तथा ऋषि गौतम संवाद, इन्द्र का वसिष्ठ से संवाद।
3	देवों के गन्धर्वों और असुरों के मध्य संवाद	शतपथ ब्राह्मण में इस संवाद का वर्णन है।

4	देवों के मनुष्यों के साथ संवाद	आप्त्यों का प्रजा से संवाद, प्रजापति–प्रज्ञा संवाद, रात्रि का राजा रथवीति से संवाद।
5	देवों के पशुओं एवं पशुओं के साथ संवाद	इन्द्र का सरमा शुनि से संवाद।
6	ऋषियों का स्तोतागण से संवाद	ऋषि काबन्धि का ऋत्विजों से संवाद।
7	ऋषियों का मनुष्यों से संवाद	ऋषि श्यावाश्व का रथवीति से संवाद, अत्रि पुत्र अर्चानानस् एवं रथवीति संवाद, भृगु का मनुष्यों से संवाद।
8	ऋषियों का ब्राह्मणों के साथ संवाद	याज्ञवल्क्य का ब्राह्ममणों के साथ संवाद, स्वैदायन का ब्राह्मणों के साथ संवाद।
9	आचार्य–शिष्य संवाद	मौद्गल्य का मैत्रेय शिष्य से संवाद, मौद्गल्य का अपने शिष्य से संवाद, अगस्त्य एवं लोपामुद्रा का आगस्त्य शिष्य से संवाद।
10	मनुष्यों के देवों के साथ संवाद	रोहित–इन्द्र संवाद, ममता के गर्भस्थ शिशु से बृहस्पति का संवाद।

संवादों के स्वरूप से परिचित कराने के प्रयास में आपको कुछ चुने हुए संवादों से अवगत कराया जा रहा हैं। ये चुने हुए संवाद निम्नवत् हैं–

6.4.1 सरमा–पाणि–संवाद

ऋन्वेद में जो कुछ संवाद प्राप्त होते हैं उनमें नीतिकथा को दृष्टि से सरमा–पणि–संवाद का बड़ा ही महत्व है। इस सूक्त में सरमा नाम की कुतिया और पणि नामक असुरों के बीच हुआ संवाद सुरक्षित है। सरमा की पूरी कहानी ऋग्वेद में नहीं मिलतो । वैदिक ग्रंथों के अनुसार कहानी इस प्रकार है पणि लोग इंद्र को गाएं चुरा ले गये थे। वे रसा नदी के पार रहा करते थे । वहाँ उन्होंने गायों को पर्वतों में छिपा रक्खा था। इंद्र ने गायों की खोज करने के लिए सरमा नाम को देवता की कुतिया को पणियों की ओर भेज दिया । वहाँ जब सरमा पहुँची तब पणियों ने उसके आने का कारण पूछा। सरमा ने अपना परिचय दिया, ''मैं इंद्र की दूती हूँ। गाएँ लौटा दो। केंद्र से झगड़ा मोल न लो। इंद्र और उसके साथो अपनी गायें ले जावेंगे। तब तुम कुछ कर न पावोगे ।'' इस पर पणियों ने सरमा को लालच देकर उसके साथ भाई–बहन का नाता जोड़ने को इच्छा प्रकट की। किन्तु सरमा उनके पक्ष को नहीं हुई। उसने इन्कार कर दिया। उसने लौटकर इंद्र को सब हाल सुनाया। तब इंद्र ने वहाँ जाकर पणियों को हराया और अपनो गायें प्राप्त कीं ।

इस प्राचीन कथा का आधार ऋग्वेद का यह संवाद सूक्त है।

किमिच्छन्ती सरमा प्रेदमानड् दूरे ह्यष्वा जगुरिः पराचौः ।
कास्मेहितिः का परितक्म्यासीत् कथं रसायाः अतरः पयांसि ।।1।।

इन्द्रस्य दूतीरिषिता चरामि मह इच्छन्ती पणयो निधीन् वः ।
अतिष्कदो भियसा तन्न आवत् तथा रसाया अतरं पयांसि ।।2।।

कोदृङ्ङिन्द्रः सरमे का दृशोका यस्येदं दूतीरसरः पराकात् ।
आ च गच्छामि मेना दधामाथा गवां गोपतिर्नो भवाति ।।3।।

नाहं तं वेद दभ्यं दभत् स यस्येदं दूतीरसरै पराकात् ।
न तं गूहन्ति स्रवतो गभीरा हता इन्द्रेण पणयः शयध्वे ।।4।।

इमा गावः सरमे या ऐच्छः परि दिवो अन्तान् सुभगे पतन्ती ।
कस्त एना अव सृजादयुव्युतास्माकमायुषा सन्ति तिग्मा ।।5।।

असेन्या वः पणयो वचांस्यनिषव्यास्तन्वः सन्तु पापीः ।
अघृष्टो व एतवा श्रस्तु पन्था बृहस्पतिर्व उभया न मृळात् ।।6।।

अयं निधिः सरमे अद्रिबुध्नो गोभिरश्वेभिर्वसुभिर्मुष्टः ।
रक्षन्ति तं पणयो ये सुगोपा रेकु पदमलकमा जगन्य ।।7।।

एह गमन्नृषयः सोमशिता अयास्यो अंगिरसो नवग्वाः ।
त एतपूर्व वि भजन्त गोनामर्थतत्रचः पणयो वमन्नित् ।।8।।

एवा च त्वं सरम आजगन्थ प्रत्राधिता सहसा दैव्येन ।
स्वसारं त्वा कृणवै मा पुनर्गा अप ते गवां सुभगे भजाम ।।9।।

नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरंगिरसश्च घोराः ।
गोकामा में अच्छदयन् यदायमपात इत पणयो वरीयः ।।10।।

दूरमित पणयो वरीय उद्ङ्गावो यन्तु मिनतोऋतेन ।
बृहस्पतिर्या अविन्दन्निगूळ्हाः सोमो ग्रावाण ऋषयश्व विप्राः ।।11।।
—ऋ. सं. 10.108

भावार्थ

1) पणि :— किस इच्छा से सरमा इघर आई ? कितना लम्बा यह रास्ता है ? सरमे, तुम्हारा हमारे पास क्या काम है? तुम रात्रि को कहां थी और रसा नदी को तैर कर इस और कैसे आ सकी ?

2) सरमा :— हे पणियों, मैं इंद्र की दूतो, इंद्र द्वारा भेजी गई है।

तुम्हारे बड़े—बड़े खजानों की इच्छा रखने वाली मैं सुरक्षित रूप से घूम रही हूँ। इसीलिए पानी को लांघकर (यहां तक) आने में मुझे डर नहीं लगता। अतः में रसा नदी को तैर कर आ गई ।

3) पाणि : — इतनी दूर से तुम जिसको दूती बनकर आई हो वह इंद्र कैसा है और उसकी दृष्टि कैसी है? वह हमारे पास आवे और हमसे मित्रता करे । वह हमारे गोधन का मालिक बने ।

4) सरमा :– जिसकी दूती बनकर मैं यहां आई हूँ वह सबको मार सकता है, किंतु उसे कोई मार नहीं सकता । (रसा का) यह गहरा प्रवाह भो उसे निगल नहीं सकता। इंद्र के द्वारा मारे जाने पर तुम्हारी मृत्यु होगी ।

5) पणि :– हे सुभगे, स्वर्ग के इर्द गिर्द घूमने वाली तुम जिन गायों की इच्छा करती हो, उन्हें युद्ध किये बिना कौन भला छोड़ेगा? हमारे शस्त्र भी तीखे हैं।

6) सरमा :– तुम्हारी यह भाषा सेना के लिए प्रेरक न हो। तुम्हारे शरीर बाण छोड़ने में असमर्थ हों। क्योंकि वे पापी हैं। तुम्हारा मार्ग चलकर जाने के लिए अयोग्य सिद्ध हो। बृहस्पति तुम्हें सुख न दें।

7) पणि :– सरमे, गाय, बैल, घोड़े और धन से भरा हुआ यह खजाना पत्थर के बने हुए दुर्ग में है। अच्छे संरक्षक पणी उसकी रक्षा कर रहे है। शंका लेकर तुम यहां व्यर्थ आई हो।

8) सरमा :– पणियों, सोम पोकर नवग्व अंगिरस श्रयास्थ गायों को बांट लेंगे। तभी तुम अपनी जिद छोड़ दोगे।

9) पणि :– सरमे, तुम्हें देवताओं ने कष्ट दिया इसीलिए यदि तुम इधर बाई हो तो हम तुम्हें बहन मान लेते हैं। तुम लौटकर न जाओ। सुभगे, तुम्हारो गायों का बटवारा हमलोग आपस में कर लेंगे।

10) सरमा :– पणियों, मैं न तो बहन का नाता जानतो हूँ और न भाई का ही। यह नाता तो इंद्र एवं भयंकर अंगिरस जानते हैं। गायों को चाहने वाले मेरे इंद्रादि देवता तुम्हारे (शिबिर के) ऊपर हमला कर देंगे। (इसलिए) पणियों दूर भाग जाओ।

11) बृहस्पति, सोम, मेधावी ऋषि एवं सोम कूटने के पत्थरों को जिन गुप्त गायों का पता लगा, उन्हें अब प्रकृति–नियम के अनुसार मुक्ति मिले। पणियों, तुम कहीं दूर चले जाओ।''

ऋग्वेद में प्राप्त कुछ सम्बादों से हो प्राचीन कहानी को कल्पना की जा सकती है। बाख्यान–सूक्तों में प्राप्त संवाद प्राचीनतम वेदिक कहानो के हो भंश हैं। फिर भी इस संवाद मात्र को पूरी कहानी नहीं कह सकते ।एक तथ्य अवश्य है। एक कृतिया मनुष्य के समान प्रौढ़ता से इंद्र को दूतो बन कार्य करे इसे महत्व है। इस प्रकार की घटना ऋग्वेद में इस सम्वाद में वर्णित है। हम देख चुके है कि, नीतिकथा में पशु–पक्षी मनुष्यवत् व्यवहार करते हैं। उनकी उस गतिविधि से मनुष्य को क्रिया (action) व्यक्त होती रहती है। वहीं तत्व (element) इस सरमा–पणि–संबाद में पाया जाता है।

किन्तु इस संवाद में सरमा को देवशुनी (Divinebitch) मानने पर ही नीतिकथा का प्राणि संबंधी पूर्व रूप देया जा सकता है। तो क्या वास्तव में सरमा देवशुनी थी ? ऋग्वेद में कहीं पर भी सरमा को कुतिया नहीं कहा गया। इस संवाद के अतिरिक्त ऋग्वेद में अन्य छः मंत्रों में सरम का उल्लेख आ चुका है । किन्तु सरमा को इंद्रदूती ही कहा है, देवशुनी नहीं ।

इन मंत्रों के भिन्न–भिन्न ऋषि और देवता है। इनसे भो सरमा को कहानी स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाती है। इन मंत्रों में सरमा को कहीं पर भी देत्रधुनी नहीं कहा गया है।[1]

शौनक ने बृहद्देवता में उसे ''इंद्र की दूती'' कहा है, वहाँ कुतिया के रूप में उसका उल्लेख नहीं है, प्रत्युत उसे ब्रह्मवादिनों में से एक माना है। किन्तु यास्क ने उसे स्पष्ट शब्दों में देवशुनी कहा है।शौनक को छोड़कर अन्य भाष्यकारों ने यास्क का ही अनुकरण किया है और उसे देवताश्रों की कुतिया माना है। सर्वानुक्रर्माण में भो उसे देवशुनो कहा है। सायण ने उसे देवशुनी कहा है और उसकी कहानी प्रस्तुत की है।

6.4.2 यम–यमी संवाद

यह संवाद ऋग्वेद के दसवें मण्डल के दसवें सूक्त में वर्णित है। विवस्वान् सूर्य की दो सहोदर सन्तानें– यम तथा यमी हैं। एक बार कामातुर यमी अपने भ्राता यम से कहती है– मैं इस निर्जन प्रदेश में तुम्हारा मिलन चाहती हूँ क्योंकि तुम गर्भावस्था से ही मेरे साथी रहे हो। विधाता को यही अभीष्ट है कि तुम्हारे द्वारा मेरी गर्भ से सन्तान उत्पन्न हो।

यम कहता है– यमी तुम्हारा भ्राता यम तुम्हारे साथ ऐसा सम्पर्क नहीं चाहता है तुम अगन्तव्या हो और यह स्थान निर्जन प्रदेश नहीं है क्योंकि प्रजापति के पुत्र सब देखते हैं।

यमी कहती है– ऐसा मैं मानती हूँ कि भगिनी तथा भ्राता का ऐसा संसर्ग मनुष्यों में त्याज्य है परन्तु देवता लोग इच्छा पूर्वक ऐसा संसर्ग ही करते हैं। अतः जैसा मैं कहती हूँ तुम वैसा ही करो। तुम मेरा पतिरूप में ग्रहण करो।

यम उत्तर देता हुआ कहता है– हमस त्य वक्ता हैं, मिथ्या कभी नहीं बोलता हूँ। अन्तरिक्ष में रहने वाले सूर्य और सरण्यू हमारे माता–पिता है। हम सहोदर भ्राता–भगिनी हैं अतः हमें ऐसा नहीं करना चाहिए।

यमी कहती है– हमें प्रजापति ने गर्भावस्था में ही दम्पत्ति बना दिया है। प्रजापति के कर्म को कोई लुप्त नहीं कर सकता है। द्यावा पृथिवी हमारे इस सम्बन्ध को जानते हैं। हमारे सम्पर्क को कौन जानता है? कौन देखता है? अतः तुम मेरी अभिलाषा पूर्ण करो।

यम कहता है– हे दुःखदायिनी यमी देवों के जो गुप्तचर हैं, वे दिन–रात विचरण करते हैं। उनके नेत्र कभी बन्द नहीं होते हैं। तुम शीघ्र ही किसी अन्य व्यक्ति के पास चली जाओ तथा रथ के चक्के की भाँति किसी अन्य के साथ मिलकर रहो। दिन रात के कल्पित भाग को यजमान यम के लिये दें। सूर्य का तेज यम के लिये सदा प्रकाश करता रहे। यमी भ्राता यम को छोड़ कर अन्यत्र चली जाये।

यम यमी से कहते हैं– हे यमी भविष्य में ऐसा भी समय आयेग जब बहिनें भ्राताओं को पतिरूप में कामना करेंगी। तुम मुझे छोड़कर किसी अन्य को अपना पति बनाओ।

यमी कहती है– वह भाई बहन भी क्या हैं जिन के होते हुए दोनों दुःख दूर न हों। मैं काम पीड़ित हूँ। तू मेरा उपभोग कर।

यम कहता है– हे यमी! मैं तुम्हारा सम्पर्क नहीं चाहता हूँ, जो भाई बहन से ऐसा सम्पर्क करता है लोग उसे लोग पापी कहते हैं।

यमी कहती है– यम तुम मुझे नहीं चाहते हो कोई अन्य स्त्री तुम्हारा आलिंग्न वैसे अनायास ही करेगी जैसे रज्जू अश्व का तथा लता वृक्ष का आलिंग्न करती है।

अन्त में यम कहता है– यमी तुम भी अन्य पुरूष का वैसे ही आलिंग्न करो जैसे लता वृक्ष का आलिंग्न करती है। तुम उसी का मन हरण करो तथा वह भी तुम्हारा मन हरण करे। ऐसी अनुचित बात मुझसे न कहो। इसी में हमारा कल्याण है।

इस संवाद का संवादात्मक दृष्टि से अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि यह संवाद दो पात्रों– यम एवं यमी के मध्य में होता है। इस संवाद का विषय है– यमी का यम से पति बनने का आग्रह करना।

यह संवाद यमी द्वारा प्रारम्भ होता है और यम द्वारा समाप्त होता है।

इस संवाद में दोनों पात्रों के विचार प्रारम्भ से लेकर अन्त पर्यन्त भिन्न–भिन्न रहते हैं। दूसरी ओर संवाद की सीमा में प्रारम्भ में भिन्नताा होने पर अन्त में ऐक्य होना अनिवार्य है। अतः इस कथनोपकथन को संवाद न कहकर के विवाद कहा जा सकता है।

परन्तु यम के इस कथन से– यमी ऐसी अनुचित बात मुझे न कहो। इसी में हमारा कल्याण है। यमी मौन हो जाती है। यहाँ किसी प्रकार का विवाद लक्षित नहीं होता है। अनुचित कथन का खण्डन एवं सिद्धान्तानुकूल उचित कथन का ग्रहण ही लक्षित होता है। यह संवाद मत भिन्नता पर समाप्त होता है परन्तु सिद्धान्तानुकूल होने के कारण इसके संवाद कोटी में रखा जाता है क्योंकि संवाद कभी भी अमर्यादित व्यवहार को अनुमति नहीं देता है।

दूसरी ओर इसमें सिद्धान्त अनुकूल कथन करने वाले पात्र यम की विजय की इच्छा न होते हुए भी विजय होती है। अतः इसे न्यायदर्शन में वर्णित 'वाद' कोटी में मान्यता देते हुए संवाद स्वीकार किया जा सकता है।

6.4.3 यम–नचिकेता संवाद

कठोपनिषद् के द्वितीयवल्ली में यह संवाद वर्णित है। जब उद्यालयक ऋषि के पुत्र नचिकेता अपने पिता से विद्रोह करके यमराज के पास जाते हैं, तो यमराज के अनुपस्थिति में यमराज के घर तीन दिन और रात बिना खाये–पिये यमराज की प्रतीक्षा करते है, तब इस बात की सूचना यमराज के आने पर यमराज की पत्नी यह कहते हुए देती है कि जिसके घर में बिना भोजन किये हुए अतिथि निवास करता है, उस व्यक्ति की ज्ञात और अज्ञात वस्तुओं की प्राप्ति की इच्छाएँ तथा समृद्धि के सुअवसर, सारे पुण्य, सन्तान तथा पशु सहित धन वैभव नष्ट हो जाता है। अपनी पत्नी के इस प्रकार की बातें सुनकर यमराज अपने अतिथि नचिकेता के पास जाकर वार्तालाप करते हैं, यह वार्तालाप अर्थात् संवाद भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। हम यहां यम नचिकेता संवाद का हिन्दी भार्वाथ आपके समक्ष प्रस्तुत कर रहे हैं–

यमराज नचिकेता से कहते हैं– हे ब्रह्मन! नमस्कार के योग्य अतिथि होते हुए भी तुमने जो मेरे घर में तीन रात्रि तक बिना खाये–पिये निवास किया, तुम्हें नमस्कार। मेरा कल्याण हो। इसलिए एक–एक रात्रि के लिए एक–एक करके मुझसे तीन वर माँग लो।

नचिकेता : हे मृत्यो! जिस प्रकार मेर पिता गौतम मेरे प्रति शांतसंकल्प, प्रसन्नचित और क्रोधरहित हो जायें और आपके द्वारा विदा किये जाने पर मुझको पहचान कर बातचीत करें, मैं तीनों वरों में से पहला वर माँगता हूँ।

यम : मेरे द्वारा प्रेरित होकर अरूणपुत्र उद्दालक तुम्हें पहले की तरह पहचान लेंगे, रात्रियों में सुखपूर्वक सोयेंगे और क्रोधरहित हो जायेंगे, क्योंकि तुम्हें मृत्यु के मुख से मुक्त देखेंगे।

नचिकेता : स्वर्गलोक में कोई भय नहीं है। वहाँ मृत्यु भी नहीं हो। वहाँ कोई वृद्धावस्था से नहीं डरता है। वहाँ पुरूष भूख और प्यास दोनों को पार करके शोक से ऊपर उठकर आनन्दित होता है।

यम : मैं उस स्वर्ग के साधनभूत अग्नि को विधिवत् जानता हूँ। सम्प्रति मैं तुम्हें उसका उपदेश दे रहा हूँ। उस उपदेश को सावधान मन होकर सुनो। यह अग्नि अनन्त लोकों की प्राप्ति अर्थात् स्वर्गलोक रूप फल की प्राप्ति का साधन तथा विराट् रूप से जगत् की प्रतिष्ठा का आश्रय है। इस अग्नि को तुम विवेकी पुरूषों की बुद्धि में स्थित समझों। गुहा शब्द का प्रयोग ब्राह्मण तथा उपनिषद् ग्रन्थों में अनेक स्थान पर हुआ है।

नचिकेता : तब यमराज ने उन लोकों के आदिकारण अग्नि का और चयन करने में जो जितनी प्रकार ईंटें होती है उसके विषय में नचिकेता को विधिवत् उपदेश दिया। उसने भी यम के द्वारा दिये गये उपदेश को यथावत् कह सुनाया। तब यम उससे संतुष्ट होकर कहते हैं।

यम : प्रसन्न होते हुए यम ने नचिकेता से कहा– अब मैं तुम्हें यहाँ एक और वर देता हूँ। यह अग्नि तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्ध होगा और तुम इस अनेक रूपों वाली रत्नामयी माला को लो।

नचिकेता : नचिकेता अग्नि को तीन बार चयन करने वाला माता, पिता और आचार्य अथवा वेद, स्मृति और शिष्ट अथवा प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम अथवा ऋक्, यजुष् और साम इन तीनों से सम्बन्ध को प्राप्त करके यज्ञ, अध्ययन और दान इन तीन कर्मो को करने वाला जन्म और मृत्यु को पार कर जाता है। ब्रह्म से उत्पन्न सर्वज्ञ स्तुत्य अग्निदेव को शास्त्रानुसार जानकर अनुभव करके इस अत्यन्त शान्ति को प्राप्त कर लेता है।

यम : जो त्रिणाचिकेत विद्वान् इन तीन ईंटो का स्वरूप, उनकी संख्या और चयनविधि को जानकर इस प्रकार शास्त्रोक्त रीति से नाचिकेत अग्नि का चयन करता है, वह पूर्व ही मृत्यु के बन्धनों को काटकर, शोक से पार होकर स्वर्गलोक में आनन्दित होता है। हे नचिकेता! यह तुम्हें स्वर्ग देने वाली अग्नि है जिसे तुमने द्वितीय वर से माँगा था। लोक इस अग्नि को तुम्हारे ही नाम से पुकारेंगे। हे नचिकेता! तीसरा वर माँगो।

नचिकेता : मृत मनुष्य के विषय में जो यह सन्देह है– कुछ लोग यह आत्मा है ऐसा कहते है और कुछ लोग यह आत्मा नहीं है, ऐसा कहते है। तुम्हारे द्वारा उपदिष्ट मैं आत्मतत्व को जान लूँ। यह वरों में से तीसरा वर है।

यम : प्राचीन काल में देवताओं ने भी इस विषय में सन्देह किया था। निश्चय ही यह धर्म आत्मज्ञान का विषय सूक्ष्म है, अतएव सरलता से जानने योग्य नही है। हे नचिकेता! दूसरा वर माँग लो। मुझे उपरूद्ध मत करो अर्थात् मुझे विवश मत करो। इस वर को मेरे लिये छोड़ दो अथवा इसे यहीं छोड़ दो, अब और आगे मत बढ़ाओ। आत्मविषयक वर के समान यदि अन्य कोई वर समझते हो तो उसे तुम माँग लो। धन और स्थायी जीविका माँग लो। हे नचिकेता! तुम इस विस्तृत पृथ्वी पर वृद्धि प्राप्त

करो। मैं तुम्हें कामनाओं का इच्छानुसार भोगने वाला बना देता हूँ।

नचिकेता : हे महाराज! ये क्षणिक भोग मनुष्य की सभी इन्द्रियों के तेज को जीर्ण कर देते हैं। सम्पूर्ण जीवन भी थोड़ा ही है अतएव वाहन आपके ही पास रहे और नाचगाना भी आपका ही रहे अर्थात् ये सब मुझे नहीं चाहिए। मनुष्य धन से तृप्त नहीं किया जा सकता। यदि आपको देख लिया है तो धन को हम प्राप्त कर लेंगे। जब तक आप शासन करेंगे, हम जीवित रहेंगे। मेरा प्रार्थनीय वर तो वही है। नचिकेता निवेदन करते हैं कि जराग्रस्त न होने वाले अर्थात् वृद्धावस्थारहित अमरों के समीप पहुँचकर नीचे पृथ्वीलोक में रहने वाला कौन वृद्ध विवेकी मनुष्य होगा जो स्वर्ण सौन्दर्यादि के राग से होने वाले सुखों को अनित्य रूप में देखता हुआ भी अतिदीर्घ जीवन में रमण करेगा। हे यमराज! जिस महान् परलोक के विषय में लोग यह शंका करते हैं कि शरीर त्याग के पश्चात् आत्मा रहता है या नहीं, उस विषय में हमें यथार्थ बतलाइये। जो यह गहनता में अनुप्रविष्ट रहस्यात्मक वर है, इससे अन्य वर नचिकेता नहीं माँगता।

6.4.4 व्याघ्र–गोमायु संवाद

महाभारत के राजधर्म पर्व में यह संवाद वर्णित है। व्याघ्र और सियार के इस संवाद में राजधर्म पर्व की नीतिकथा है। इसमें दिखाया गया है कि राजा के पास रहने वाले लोगों का स्वभाव किस प्रकार का होता है।

म्हाराज युधिष्ठिर ने भीष्म से पूछा, 'कई लोग सौम्य दिखाई देते है, किन्तु वास्तव में वे सौम्य नहीं होते। कई सच्चे सौम्य व्यक्ति क्रूर दिखाई देते हैं। इसलिए पितामह, मुझे बताइये कि आदमी को कैसे पहचानना चाहिए।

इस पर भीष्म ने व्याघ्र एवं सियार का एक दृष्टान्त सुनाया है। कहानी संक्षेप में इस प्रकार है :–

पौरिक नामक राजा को क्रूर कर्म के कारण दुर्गति प्राप्त हुई और दूसरे जन्म में वह सियार पैदा हुआ। उसे पूर्व जन्म के ऐश्वर्य का स्मरण हो जाता था और खेद के कारण किसी प्राणि की हिंसा न करता था। वह सत्यभाषी, स्मशान–वासी एवं फलभक्षी बन गया था। अन्य जानवरों ने उसे समझाया कि जिस कुल में तुम पैदा हुए हो वह मांसभक्षी का कुल है। तुम्हें हमारे जैसा ही आचरण करना चाहिए। सियार ने शान्त भाव से कहा, 'आचरण को देखकर ही कुछ निर्धारित होता है। जिससे कीर्ति बढ़ेगी वही कर्म मुझे करना है। धर्म के लिये आश्रम कारण नही है। स्वभाव के अनुसार ही धर्मक्रिया सम्पन्न होती है। तुम लोग स्वयं एवं मोह में आसक्त हो। तुम्हें उनके परिणाम की कोई कल्पना नहीं। मुझे इहलोक एवं परलोक में जो श्रेयस्कर होगा उसी का आचरण करने की इच्छा है।'

उसके इस विशुद्धाचरण एवं पांडित्य को देखकर पराक्रमशील व्याघ्र ने उसे मंत्री नियुक्त किया। व्याघ्र ने उसे अपने पास रहने और अभीष्ठ वस्तु ग्रहण करने को कहा। व्याघ्र ने कहा, 'मैं कड़े स्वभाव का अवश्य हूँ किन्तु सरल स्वभाव से व्यवहार कर मुझसे तुम लाभ उठा सकोगे।'

सियार ने कहा, 'मृगराज, मेरे बारे में आपने जो कुछ कहा वह आपको उचित दिखाई देता है। धर्म और अर्थमें निपुण तथा पवित्र चरित्र के मंत्री की खोज में आप हो। अमात्य के बिना रजा की क्या सुरक्ष? अमात्य भी दुष्ट एवं अत्याचारी होगा तो सुरक्षा असंभव है। आपसे प्रेम करने वाले, नीति के जानकरार, सहयोग करने वाले, जिनके

आपस में आप्तसंबंध न हो, शत्रु को जीतने की इच्छा रखने वाले, लोभ न रखने वाले तथा अनेक गुणों से युक्त व्यक्ति को अमात्य बनाकर सम्मानित कीजिए। महाराज, सन्तोष मुझे अच्छा लगता है। धन सम्पत्ति की मुझे आवश्यकता नही। मेरा स्वभाव अन्य सहयोगियों से मेल नही खायेगा। वे लोग नहीं चाहेंगे कि मैं आपका मंत्री बना रहूं। मैं युद्ध आचरण से चलने वाला हूँ, मैंने कभी सेवा नहीं की। लोग राजा के साथ रहने वालों की बुराई राजा के पास जाकर किया करते है। किन्तु स्वतन्त्र रहने वाले लोग निर्भय होते है। राजा जिसे बुलाता है वह डर जाता है। किन्तु यह डर अरण्य में फल–मूल खाकर रहने वाले प्राणी में नही होता। वही सच्ची शान्ति है। अपराधियों की अपेक्षा राजा के सेवकों की ही अधिक मृत्यु हुई है। इसलिए यह निश्चय कर लो कि मेरे लोगों का सम्मान हो, मेरी सलाह आपकी ग्राह्य होगी। मैं अन्य अमात्यों से मंत्रणा नहीं करूंगा। अपने जातिबांधव के विषय में मुझे न पूछो। अमात्यों को पीड़ा न हो और मेरे जो लोग होंगे उन्हे क्रोध में आकर सजा न दी जावे।'

व्याघ्र ने यह सब मंजूर कर लिया, तब सियार अमात्य हुआ। यह देख अन्य अमात्य इस पर जलने लगे। वे चाहने लगे कि यह सियार भी उनके ही जैसा दुष्ट व्यवहार करे। अब उन्हें पूर्ववत् स्वतंत्रता नहीं रही थी। कुछ प्राणियों ने एक षड्यन्त्र रचा। व्याघ्र को मांस प्रिय था। उसे उन्होंने सियार के घर में लाकर रख दिया। सियार सब समझ रहा था, किन्तु उसने सब सह लिया। क्योंकि व्याघ्र के वचन का उसे स्मरण था।

जब व्याघ्र को भूख लगी तब उसे इच्छित मांस नही मिला। उसके पूछने पर धूर्त प्राणियों ने उसे कहा, अपने आपको सदाचारी समझने वाले मंत्री सियार ने ही वह मांस चुराया है। यह सुनते ही व्याघ्र क्रोध से लाल पड़ गया। प्राणियों ने मंत्री सियार की काफी निंदा की और व्याघ्र का ले जाकर सियार के घर पर पड़ा मांस दिखला दिया। क्रोध मे आकर व्याघ्र ने उसका वध करने का आदेश दिया।

इस पर व्याघ्र की माता ने उसे समझाया कि यह सब षड्यन्त्र है। बुरे लोग अच्छे लोगों का द्वेष करते हैं। मंत्री सियार निर्दोष है। इसके बाद सियार के शत्रु–समुदाय में से एक व्यक्ति आगे आया और उसने उस षड्यंत्र की जानकारी दे दी। तब व्याघ्र ने सियार को गले लगा लिया और प्राणदण्ड से मुक्त कर दिया।

इस अपमान से दुखी होकर सियार ने अनशन करना चाहा। व्याघ्र ने उसका सम्मान किया और अनशन न करने की प्रार्थना की। तब सियार ने उसे उपदेश दिया और कहा, मुझे अब आपके पास नही रहना चाहिए। उसने धर्म, अर्थ और काम से युक्त भाषण किया और वह अरण्य में चला गया। व्याघ्र के अनुरोध की ध्यान न देकर उस बुद्धिमान सियार ने अनशन किया और वह स्वर्ग पहुंच गया।

सियार और व्याघ्र की मूलकथा लोगों में प्रचलित रही होगी। मूल कथा के अनुसार बुद्धिमान एवं निर्दोष सियार को कपट से उसके साथियों ने मौत के घाट उतारा होगा। किन्तु यहां सियार पूर्व जन्म में राजा था। इस जन्म में वह सियार होते हुए भी सदाचरणों और अमांसभक्षी है। संतोष उसके मन में है। बौद्धों ने सियारों को कपटी और लोभी बतलाया है और पंचतंत्र में भी सियार का स्वभाव धूर्त, स्वार्थ–परायण और धोखेबाज दिखाया गया है। किन्तु व्याघ्र और सियार की इस कथा में सियार का आचरण सदाचरणों ऋषि कान्सा है। स्पष्ट है कि सदाचरण और त्याग का महत्व बढ़ाने के लिये सियार के उदात्त चरित्र को ब्राह्मणों ने प्रस्तुत किया है।

इसलिए यह नीतिकथा स्वाभाविक नहीं लगती। व्याघ्र और सियार के स्वभाव में कुछ कृत्रिमता का आभास हमें होताहै। बीच बीच में सियार के मुख से उच्च गुणों का आदर्शवाद व्यक्त हो रहा है। व्याघ्र से अपमानित होने पर उसने अपना देहत्याग कर दिया। इसमें सियार की परम्परागत चतुरता एवं नीतिनिपुणता की अपेक्षा, उसके शान्त दान्त स्वभाव का ही परिचय हमें अधिक मिलता है। असत्य, हिंसा, स्तेय तथा छल कपट से दूर रहने वाला सियार अन्त में तपस्वी की तरह अपना देहत्याग करता है। यद्यपि वह नीतिशास्त्र का ज्ञाता है, फिर भी कपटी के साथ कपट करने की बुद्धि उसे नही होती। शठं प्रति शाठयम् यह नीतिवाक्य उसे सम्मत नहीं है। इस अर्थ में, वह बौद्ध विचारों से प्रभावित है। पूर्वजन्म के कर्म के कारण दूसरे जन्म में उसे सियार का जन्म प्राप्त हुआ। इस घटना के पीछे जातक का प्रभाव परिलक्षित होता है। बौद्ध दर्शन के अनुसार कर्म सिद्धान्त और पुनर्जन्म होने पर उसका संस्कार आदि तत्व इस श्रृगालकथा में भी दिखाई देता है। क्षुद्र प्राणी होते हुए भी उसका चरित्र उदात्त दिखाने का जो भरसक प्रयास किया गया है। वह भी संभवतः जातकीय नीतिकथा के प्रभाव से। क्योंकि बन्दर आदि क्षुद्र प्राणियों में जन्म लेकर भी बोधिसत्व परोपकार दया, क्षान्ति, अहिंसा आदि गुणों के आदर्श का परिपालन करते हुए दिखाई देते हैं। यहां भी सियार होते हुए भी वह फल–मूल भक्षी है अमात्य है किन्तु धूर्त नहीं है, अतः बौद्ध नीतिकथा से यह सियार की कथा बहुत काफी समानता रखती है। किन्तु यह प्रभाव अनजाने ही इस कथा पर पड़ा होगा। ब्राह्मणों ने उस नीतिकथा को अपनाया होगा जो पहले ही बौद्ध प्रभाव से जनता का लोकप्रिय हो चुकी हो।

महाभारत में अन्यत्र सियार धूर्त एवं कपटी बनकर विचरण कर रहे है। किन्तु इसी कथा में वह उदात्त चरित्र का तपस्वी है। इससे स्पष्ट है कि लोककथा से मूल रूप में यह कथा महाभारत में नहीं आ सकी। संभव है, नीतिशास्त्र के प्रतिपादन के लिये किसी आचार्य ने ही इस प्रकार की कहानी गढ़ ली जो महाभारत में प्रवेश कर गयी है।

6.4.5 याज्ञवल्क्य मैत्रयी संवाद

याज्ञवल्क्यमैत्रयी संवाद बृहदारण्यकोपनिषद् के द्वितीय अध्याय के चतुर्थ ब्राह्मण में वर्णित है। यह संवाद एक पति द्वारा अपने पत्नी को धन सम्पत्ति देने के अपील के समय हुई वार्तालाप पर आधारित है।

याज्ञवल्क्य : 'अरी मैत्रेयी'! मैं इस स्थान गार्हस्थ्य आश्रम से ऊपर जाने वाला हूँ। अतः तेरी अनुमति लेता हूँ और चाहता हूँ इस कात्यायनी के साथ तेरा बँटवारा कर दूँ।

मैत्रेयी : 'भगवन्! यदि यह धन से सम्पन्न सारी पृथिवी मेरी हो जाय जो क्या मैं उससे किसी प्रकार अमर हो सकती हूँ?'

याज्ञवल्क्य : नहीं, भोग सामग्रियों से सम्पन्न मनुष्यों का जैसा जीवन होता है, वैसा ही तेरा जीवन हो जायेगा। धन से अमृतत्व की तो आशा है नहीं।

मैत्रेयी : जिससे मैं अमर नहीं हो सकती, उसे लेकर मैं क्या करूँगी? श्रीमान् जो कुछ अमृतत्व का साधन जानते हों, वही मुझे बतलावें।

याज्ञवल्क्य : धन्य! अरी मैत्रेयी, तू पहले भी हमारी प्रिया रही है और इस समय भी प्रिय लगने वाली ही बात कह रही है। अच्छा आ, बैठ जा, मैं तेरे प्रति उसकी व्याख्या करूँगा, तू व्याख्यान किये हुए मेरे वाक्यों के अर्थ का चिन्तन करना।

अरी मैत्रेयी! यह निश्चय है कि पति के प्रयोजन के लिये पति प्रिय नहीं होता, अपने ही प्रयोजन के लिये पति प्रिय होता है, स्त्री के प्रयोजन के लिये स्त्री प्रिया नहीं होती, अपने ही प्रयोजन के लिये स्त्री प्रिया होती है, पुत्रों के प्रयोजन के लिये पुत्र प्रिय नहीं होते, अपने ही प्रयोजन के लिये पुत्र प्रिय होते हैं, धन के प्रयोजन के लिये धन प्रिय नहीं होता, अपने ही प्रयोजन के लये धन प्रिय होता है, ब्राह्मण के प्रयोजन के लिये ब्राह्मण प्रिय नहीं होता, अपने ही प्रयोजन के लिये ब्राह्मण प्रिय होता है, क्षत्रिय के प्रयोजन के लिये क्षत्रिय प्रिय नहीं होता, अपने ही प्रयोजन के लिये क्षत्रिय प्रिय होता है, लोकों के प्रयोजन के लिये लोक प्रयि नहीं होते अपने ही प्रयोजन के लिये लोक प्रिय होते है, देवताओं के प्रयोजन के लिये देवता प्रिय नहीं होते, अपने की प्रयोजन के लिये देवता प्रिय होते है। प्राणियों के प्रयोजन के लिये प्राणी प्रिय नहीं होते, अपने ही प्रयोजन के लिये प्राणी प्रिय होते है तथा सबके प्रयोजन के लिये सब प्रिय नहीं होते, अपने ही प्रयोजन के लिये सब प्रिय होते हैं, अरी मैत्रेयि! यह आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय और ध्यान किये जाने योग्य है। हे मैत्रेयि! इस आत्मा के ही दर्शन, श्रवण, मनन एवं विज्ञान से इस सबका ज्ञान हो जाता है।

ब्राह्मणजाति उसे परास्त कर देती है जो ब्राह्मण जाति को आत्मा से भिन्न जानता है। क्षत्रिय जाति उसे परास्त कर देती है जो क्षत्रिय जाति को आत्मा से भिन्न देखता है। लोक उसे परास्त कर देते हैं जो लोकों से आत्मा से भिन्न देखता है। देवगण उसे परास्त कर देते हैं जो देवताओं को आत्मा से भिन्न देखता है। भूतगण उसे परास्त कर देते हैं जो भूतों को आत्मा से भिन्न देखता है। सभी उसे परास्त कर देते हैं जो सबको आत्मा से भिन्न देखता है। यह ब्राह्मण जाति, यह क्षत्रिय जाति, ये लोक, ये देवगण, ये भूतगण और ये सब जो कुछ भी है, यह सब आत्मा ही है।

वह दृष्टान्त ऐसा है कि जिस प्रकार ताडन किये जाते हुए दुन्दुभि के बाह्य शब्दों को कोई ग्रहण नहीं कर सकता, किन्तु दुन्दुभि या दुन्दुभि क आघात को ग्रहण करने से उसका शब्द भी ग्रहण कर लिया जाता है।

वह दूसरा दृष्टान्त ऐसा है– जैसे कोई बजाये जाते हुए शङ्ख के बाह्य शब्दों को ग्रहण करने में समर्थ नहीं होता, किन्तु शङ्ख के अथवा शङ्,स के बजाने को ग्रहण करने से उस शब्द का भी ग्रहण हो जाता है।

वह तीसरा दृष्टान्त ऐसा है– जैसे कोई बजायी जाती हुई वीणा के बाह्य शब्दों को ग्रहण करने में समर्थ नहीं होता, किन्तु वीणा या वीणा के स्वर का ग्रहण होने पर उस शब्द का भी ग्रहण हो जाता है।

वह चौथा दृष्टान्त ऐसा है– जिस प्रकार ईंधन गीला है, ऐसे आधान किये हुए अग्नि से पृथक् धूआँ निकलता है, हे मैत्रेयि! इसी प्रकार ये जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, मन्त्रविवरण और अर्थवाद हैं, वे इस महद्भूत के ही निःश्वास हैं।

वह दृष्टान्त– जिस प्रकार समस्त जलों का समुद्र एक अयन है, इसी प्रकार समस्त स्पर्शों का त्वचा एक अयन है, इसी प्रकार समस्त गन्धों का दोनों नासिकाएँ एक अयन है, इसी प्रकार समस्त रसों का जिह्वा एक अयन है, इसी प्रकार समस्त रूपों का चक्षु एक अयन है, इसी प्रकार समस्त शब्दों का श्रोत्र एक अयन है, इसी प्रकार समस्त संकल्पों का मन एक अयन है, इसी प्रकार समस्त विद्याओं का हृदय एक अयन है, इसी प्रकार समस्त कर्मों का हस्त एक अयन है, इसी प्रकार समस्त आनन्दों का उपस्थ एक अयन है और इसी प्रकार समस्त विसर्गों का पायु एक अयन है, इसी

प्रकार समस्त मार्गों का चरण एक अयन है और इसी प्रकार समस्त वेदों का वाक् एक अयन है।

6.4.6 नागसेन मीनांडर संवाद

अपने उत्तर में नागसेन ने बुद्ध के दर्शन के अनात्मवाद, कर्म या पुनर्जन्म, नाम–रूप (मन और भौतिक तत्त्व), निर्वाण आदि को ज्यादा विशद करने का प्रयत्न किया।

1) अनात्मवाद– मिनान्दर ने पहले बौद्ध के अनात्मवाद की ही परीक्षा करनी चाही। उसने पूछा –

क) ''भन्ते (स्वामिन) ! आप किस नाम से जाने जाते हैं ?

''नागसेन नाम से (मुझे) पुकारते हैं? किन्तु यह केवल व्यवहार के लिए संज्ञा भर है, क्योंकि यथार्थ में ऐसा कोई एक पुरुष (आत्मा) नहीं है।''

''भन्ते! यदि एक पुरुष नहीं है तो कौन आपको वस्त्र भोजन देता है? कौन उसको भोग करता है? कौन शील (सदाचार) की रक्षा करता है? कौन ध्यान ..... का अभ्यास करता है? कौन आर्यमार्ग के फल निर्वाण का साक्षात्कार करता है? यदि ऐसी बात है तो न पाप है और न पुण्य, न पाप और पुण्य का कोई करने वाला है... कराने वाला है। .....न पाप और पुण्य के फल होते हैं?..... यदि आपको कोई मार डाले तो किसी का मारना नहीं हुआ।..... नागसेन क्या है? ..... क्या ये केश नागसेन हैं?'' ''नहीं महाराज !'' (फिर)

''ये रोयें नागसेन हैं ?''

''नहीं महाराज !''

''ये नख, दाँत, चमड़ा, मांस, स्नायु, हड्डी, मज्जा, बुक्क, हृदय, यकृत, क्लोमक, प्लीहा, फुफ्फुस, आँत पतली आँत, पेट, पाखाना, पित्त, कफ, पीव, लोहू, पसीना, मेद, आँसू, चर्बी, राल, नासामल, कर्णमल, मस्तिष्क नागसेन हैं?''

''नहीं महाराज ।'' ''तब क्या आप का रूप (भौतिक तत्त्व) वेदना संज्ञा संस्कार या विज्ञान नागसेन हैं ?''

''नहीं महाराज !''

''.....तो क्या नागसेन हैं ?'' रूप विज्ञान (= पाँचों स्कंध) सभी एकसाथ नहीं महाराज !''

''.....तो क्या–रूप आदि से भिन्न कोई नागसेन है ?''

''नहीं महाराज !''

''भन्ते ! मैं आपसे पूछते–पूछते थक गया, किन्तु श्नागसेनश क्या है, इसका पता नहीं लग सका। तो क्या नागसेन केवल शब्दमात्र है ? आखिर नागसेन है कौन?''

'''महाराज !.....क्या आप पैदल चलकर यहाँ आये या किसी सवारी पर ?''

''भन्ते !... मैं..... रथ पर आया।''

''महाराज ! ...तो मुझे बतायें कि आपका 'रथ' कहाँ है ? क्या हरीस (=ईषा) रथ है ?''

''नहीं भन्ते !''

''क्या अक्ष रथ है ?''

''नहीं भन्ते !''

''क्या चक्के रथ हैं ?''

''नहीं भन्ते !''

''क्या रथ का पंजर रस्सियाँ लगाम चाबुक ..... रथ है ?''

''नहीं भन्ते !''

''महाराज ! क्या हरीस आदि सभी एकसाथ रथ हैं ?''

''नहीं भन्ते !''

''महाराज ! क्या हरीस आदि के परे कहीं रथ है ?''

''नहीं भन्ते !''

''महाराज !;; मैं आपसे पूछते–पूछते थक गया, किन्तु यह पता नहीं लगा कि रथ कहाँ है ? क्या रथ केवल एक शब्दमात्र है ? आखिर यह रथ है क्या ? आप झूठ बोलते हैं कि रथ नहीं है ! महाराज ! सारे जम्बूद्वीप (भारत) के आप सबसे बड़े राजा हैं भला किससे डरकर आप झूठ बोलते हैं ?''

''भन्ते नागसेन ! मैं झूठ नहीं बोलता। हरीस आदि रथ के अवयवों के आधार पर केवल व्यवहार के लिए श्रथश ऐसा एक नाम बोला जाता है।''

''महाराज ! बहुत ठीक, आपने जान लिया कि रथ क्या है। इसी तरह मेरे केश आदि के आधार पर केवल व्यवहार के लिए 'नागसेन' ऐसा एक नाम बोला जाता है। परन्तु परमार्थ में श्नागसेनश कोई एक पुरुष विद्यमान नहीं है। भिक्षुणी वज्रा ने भगवान् के सामने इसीलिए कहा था–

''जैसे अवयवों के आधर पर 'रथ' संज्ञा होती है, इसी तरह (रूप आदि) स्कंधों के होने से एक सत्त्व (जीव) समझा जाता है।''

ख) ''महाराज 'जान लेना' विज्ञान की पहचान है, 'ठीक से समझ लेना' प्रज्ञा की पहचान है ! और 'जीव' ऐसी कोई चीज नहीं है।''

''भन्ते ! यदि जीव कोई चीज ही नहीं है, तो हम लोगों में वह क्या है जो आँख से रूपों को देखता है, कान से शब्दों को सुनता है, नाक से गंधों को सूँघता है, शरीर से स्पर्श करता है और मन से धर्मों को जानता है !''

''महाराज ! यदि शरीर से भिन्न कोई जीव है जो हम लोगों के भीतर रह आँख से रूप को देखता है, तो आँख निकाल लेने पर बड़े छेद से उसे और भी अच्छी तरह देखना चाहिए। कान काट देने पर बड़े छेद से उसे और भी अच्छी तरह सुनना चाहिए ! नाक काट देने पर उसे और भी अच्छी तरह सूँघना चाहिए। जीभ काट देने पर उसे और भी अच्छी तरह स्वाद लेना चाहिए और शरीर को काट देने पर उसे और भी अच्छी तरह स्पर्श करना चाहिए।''

''नहीं भन्ते ! ऐसी बात नहीं है।''

''महाराज ! तो हम लोगों के भीतर कोई जीव भी नहीं है।''

2) कर्म या पुनर्जन्म– आत्मा के न मानने पर किये गये भले–बुरे कर्मों की जिम्मेदारी तथा उसके अनुसार पः नोक में दुःख–सुख भोगना कैसे होगा, मिनान्दर ने इसी चर्चा चलाते हुए कहा– ''भंते ! कौन जन्म ग्रहण करता है ?''

''महाराज ! नाम (विज्ञान) और रूप.....

''क्या यही नाम–रूप जन्म ग्रहण करता है ?''

''महाराज ! यही नाम और रूप जन्म नहीं ग्रहण करता। मनुष्य इस नाम और रूप से पाप या पुण्य करता है, उस कर्म के करने से दूसरा नाम–रूप जन्म ग्रहण करता है ।''

''भन्ते ! तब तो पहला नाम और रूप अपने कर्मों से मुक्त हो गया ?''

''महाराज ! यदि फिर भी जन्म नहीं ग्रहण करे, तो मुक्त हो गया, किन्तु चूँकि वह फिर भी जन्म ग्रहण करता है, इसलिए (मुक्त) नहीं हुआ।''

''.....उपमा देकर समझायें।''

i) आम की चोरी– कोई आदमी किसी का आम चुरा ले। उसे आम का मालिक पकड़ कर राजा के पास ले जाये– 'राजन ! इसने मेरा आम चुराया है।' इस पर वह (चोर) ऐसा कहे– 'नहीं, मैंने इसके आमों को नहीं चुराया है। इसने (जो आम लगाया था) वह दूसरा था और मैंने जो आम लिये, वे दूसरे हैं।' .....महाराज ! अब बतावें कि उसे सजा मिलनी चाहिए या नहीं ?''

''.....सजा मिलनी चाहिए।''

''सो क्यों ?''

''भन्ते ? वह ऐसा भले ही कहे, किन्तु पहले आम को छोड़ दूसरे ही को चुराने के लिए उसे जरूर सजा मिली चाहिए।''

''महाराज ! इसी तरह मनुष्य इस नाम और रूप से पाप या पुण्य ... ... करता है। उन कर्मों से दूसरा नाम और रूप जन्मता है। इसलिए वह अपने कर्मों से मुक्त नहीं हुआ.....''

ii) ''आग का प्रवास– महाराज ! कोई आदमी जाड़े में आग जलाकर तापे और उसे बिना बुझाए छोड़कर चला जाये। वह आग किसी दूसरे आदमी के खेत को जला दे (पकड़ कर राजा के पास ले जाने पर वह आदमी बोले–) ''मैंने इस खेत को नहीं जलाया ।।..... वह दूसरी ही आग थी जिसे मैंने जलाया था और वह दूसरी है जिससे ..... खेत जला। मुझे सजा नहीं मिलनी चाहिए।' .....महाराज ! उसे सजा मिलनी चाहिए या नहीं ?''

''.....मिलनी चाहिए। खेत को भी जला दिया।'' उसी की जलाई हुई आग ने बढ़ते–बढ़ते खेत को भी जला दिया।

iii) ''दीपक से आग लगना – महाराज ! कोई आदमी दीया लेकर अपने घर के उपरले छत पर जाये और भोजन करे। वह दीया जलता हुआ कुछ तिनकों में लग जाये। वह तिनके घर को (आग) लगा दें और वह घर सारे गाँव को लगा दे। गाँव वाले उस आदमी को पकड़ कर कहें– तुमने गाँव में क्यों आग लगाई ? इस पर वह कहे– श्मैंने गाँव में आग नहीं लगाई। उस दीये

की आग दूसरी ही थी जिसकी रोशनी में मैंने भोजन किया था ष्और वह आग दूसरी ही थी जिसने गाँव जलाया। इस तरह आपस में झगड़ा करते (यदि) वे आपके पास आये, ता आप किघर फैसला देंगे ?''

''भन्ते ! गाँव वालों की ओर..... ।''

''महाराज । इसी तरह यद्यपि मृत्यु के साथ एक नाम और रूप का लय होता है और जन्म के साथ दूसरा नाम और रूप उठ खड़ा होता है, किन्तु यह भी उसी से होता है। इसलिए वह अपने कर्मों से मुक्त नहीं हुआ।''

ग) ''विवाहित कन्या–महाराज ! कोई आदमी ....रुपया दे एक छोटी–सी लड़की से विवाह कर कहीं दूर चला जाये। कुछ दिनों के बाद वह बढकर जवान हो जाये। तब कोई दूसरा आदमी रुपया देकर उससे विवाह कर ले। इसके बाद पहला आदमी आकर कहे– श्तुमने मेरी स्त्री को क्यों निकाल लिया ?'' इस पर वह ऐसा जवाब दे– मैंने तुम्हारी स्त्री को नहीं निकाला। वह छोटी लड़की दूसरी ही थी जिसके साथ तुमने विवाह किया था और जिसके लिए रुपये दिये थे। यह सयानी, जवान औरत दूसरी ही है जिसके साथ कि मैंने विवाह किया है और जिसके लिए रुपये दिये हैं। अब, यदि दोनों इस तरह झगड़ते हुए आपके पास आयें तो आप किधर फैसला देंगेश ?''

''.....पहल आदमी की ओर। (क्योंकि) वही लड़की तो बढ़कर सयानी हुई।

घ) 10. ''भन्ते ! जो उत्पन्न है, वह वही व्यक्ति है या दूसरा ?''

''न वही और न दूसरा ही। (1) जब आप बहुत बच्चे थे और खाट पर चित्त ही लेट सकते थे, क्या आप अब इतने बड़े होकर भी वही हैं ?''

''नहीं भन्ते ! अब मैं दूसरा हो गया हूँ।''

''महाराज ! यदि आप वही बच्चा नहीं हैं, तो अब आपकी कोई माँ भी नहीं है, कोई पिता भी नहीं है, कोई गुरु भी नहीं।... क्योंकि तब तो गर्भ की भिन्न–भिन्न अवस्थाओं की भी भिन्न–भिन्न माताएँ होंगी। बड़े होने पर माता भी भिन्न हो जायेगी। शिल्प सीखने वाला (विद्यार्थी) दूसरा और सीख कर तैयार (हो जाने पर) दूसरा होगा। अपराध करने वाला दूसरा होगा और (उसके लिए) हाथ–पैर किसी दूसरे का काटा जायेगा ।''

''भन्ते !.....आप इससे क्या दिखाना चाहते हैं ?''

''महाराज ! मैं बचपन में दूसरा था और इस समय बड़ा होकर दूसरा हो गया हूँय किन्तु वह सभी भिन्न–भिन्न अवस्थाएँ इस शरीर पर ही घटने से एक ही में ले ली जाती हैं।.....

''(2) यदि कोई आदमी दीया जलाये, तो वह रात भर जलता रहेगा न?''

''.....रात भर जलता रहेगा।''

''महाराज ! रात के पहले पहर में जो दीये की टेम थी, क्या वही दूसरे या तीसरे पहर में भी बनी रहती है ?''

''नहीं, भन्ते !''

''महाराज ! तो क्या वह दीया पहले पहर में दूसरा, दूसरे और तीसरे पहर में

और हो जाता है ?''

''नहीं भन्ते ! वह दीया सारी रात जलता रहता है ।''

''महाराज ! ठीक इसी तरह किसी वस्तु के अस्तित्व के सिलसिले में एक अवस्था उत्पन्न होती है, एक लय होती है–और इस तरह प्रवाह जारी रहता है। एक प्रवाह की दो अवस्थाओं में एक क्षण का भी अन्तर नहीं होताय क्योंकि एक के लय होते ही दूसरी उत्पन्न हो जाती है। इसी कारण न (वह) वही जीव है और न दूसरा ही हो जाता है।

एक जन्म के अन्तिम विज्ञान (चेतना) के लय होते ही दूसरे जन्म का प्रथम विज्ञान उठ खड़ होता है।

ङ) ''भन्ते ! जब एक नाम–रूप से अच्छे या बुरे कर्म किये जाते हैं, तो वे कर्म कहाँ ठहरते हैं ?''

''महाराज ! कभी भी पीछा नहीं छोड़ने वाली छाया की भाँति वे कर्म उसका पीछा करते हैं।''

''भन्ते ! क्या वे कर्म दिखाये जा सकते हैं, (कि) वह यहाँ ठहरे हैं ?''

''महाराज ! वे इस तरह नहीं दिखाये जा सकते।....क्या कोई वृक्ष के उन फलों के दिखा सकता है जो अभी लगे ही नहीं .....?''

3) नाम और रूप–बुद्ध ने विश्व के मूल तत्त्वों को विज्ञान (नाम) और भौतिक–तत्त्व (=रूप) में बाँटा है, इनके बारे में मिनान्दर ने पूछा– ''भन्ते !..... नाम क्या चीज है और रूप क्या चीज ?''

''महाराज ! जितनी स्थूल चीजें हैं, सभी रूप हैंय और जितने सूक्ष्म मानसिक धर्म हैं, सभी नाम हैं।.....दोनों एक–दूसरे के आश्रित हैं, एक–दूसरे के बिना ठहर नहीं सकते। दोनों (सदा) साथ ही होते हैं। ...यदि मुर्गी के पेट में (बीज रूप में) बच्चा नहीं हो तो अंडा भी नहीं हो सकता, क्योंकि बच्चा और अंडा दोनों एक–दूसरे पर आश्रित हैं। दोनो एक ही साथ होते हैं। यह (सदा से) होता चला आया है।.....

4) निर्वाण–मिनान्दर के निर्वाण के बारे में पूछते हुए कहा –

''भन्ते ! क्या निरोध हो जाना ही निर्वाण है ?''

''हाँ, महाराज ! निरोध (= बन्द) हो जाना ही निर्वाण है।.....सभी..... अज्ञानी विषयों के उपभोग में लगे रहते हैं, उसी में आनन्द लेते हैं, उसी में डूबे रहते हैं। वे उसी की धारा में पड़े रहते हैंय बार–बार जन्म लेते, बूढ़े होते, मरते, शोक करते, रोते–पीटते, दुःख, बेचौनी और परेशानी से नहीं छूटते । (वह) दुःख ही दुःख में रहते है। महाराज ! किन्तु, ज्ञानी.....विषयों के भोग (= उपादान) में नहीं लगे रहते। इससे उनकी तृष्णा का निरोध हो जाता है। उपादान के निरोध से जव (=आवागमन) का निरोध हो जाता है। भव के निरोध से जन्मना बन्द हो जाता है।.....फिर) बूढ़ा होना, मरना सभी दुःख बन्द = (निरुद्ध) हो जाते हैं। महाराज ! इस तरह निरोध हो जाना ही निर्वाण है।''

''.....(बुद्ध) कहाँ हैं ?''

''महाराज ! भगवान् परम निर्वाण को प्राप्त हो गये हैं जिसके बाद उनके व्यक्तित्व को बनाये रखने के लिए कुछ भी रह नहीं जाता .....''

''भन्ते ! उपमा देकर समझायें।''

''महाराज ! क्या होकर–बुझ गई जलती आग की लपट दिखाई जा सकती है.....?''

''नहीं भन्ते ! वह लपट तो बुझ गई।''

नागसेन ने अपने प्रश्नोत्तरों से बुद्ध के दर्शन में कोई नई बात नहीं जोड़ी, किन्तु उन्होंने उसे कितना साफ किया, यह ऊपर से उद्धरणों से स्पष्ट है। यहाँ हमें यह भी स्मरण रखना चाहिए कि नागसेन का अपना जन्म हिन्दी–यूनानी साम्राज्य और सभ्यता के केन्द्र स्यालकोट (=सागल) के पास हुआ था और भारतीय ज्ञान के साथ–साथ यूनानी ज्ञान का भी परिचय रखने के कारण ही वह मिनान्दर जैसे तार्किक का समाधान कर सके थे। मिनान्दर और नागसेन का यह संवाद इतिहास की उस विस्तृत घटना का एक नमूना है जिसमें कि हिन्दी और यूनानी प्रतिमाएँ मिल कर भारत में नई विचार–धाराओं का आरम्भ कर रही थीं।

6.4.7 आदिगुरू शंकराचार्य तथा उभयभारती संवाद

एक पण्डित का पण्डित से शास्त्रार्थ तो साधारण सी बात लगती है, परन्तु एक महिला का एक अल्पवयस् सन्यासी से किया गया शास्त्रार्थ, वह भी अत्यन्त विशिष्ट विषय को लेकर, किसी भी चिन्तनशील व्यक्ति को बहुत से सोचने के लिये बाध्य करता है। भारत की स्त्री पुरूष की सहधर्मचारिणी है, यज्ञ में वामाङ्ग में बैठकर धर्म कार्य सम्पादन का अधिकार प्राप्त होने के कारण वह पत्नी कहलाती है। मण्डन मिश्र की अर्धाङ्गिनी उभयभारती भारतीय संस्कृति की प्रतिनिधित्वकर्त्री है। वह कोई साधारण स्त्री नहीं थी, सभी शास्त्रों में उनका अप्रतिम अधिकार था। वे शास्त्रमर्मज्ञा थी और शास्त्रार्थमर्यादा से सुपरिचित थीं। इसीलिए जैमिनि और व्यासदेव ने श्रेष्ठ मीमांसक मण्डन मिश्र के साथ आयोजित शास्त्रार्थ सभा में उनको निर्णायिका बनाने का प्रस्ताव रखा। उभयभारती ने जय और पराजय के निर्णय का आधार पुष्पमाला को बनाया और स्वयं स्त्री धर्म का निर्वाह करने हेतु पाकशाला का निरीक्षण करने लगीं। वाद गोष्ठी की समाप्ति के उपरान्त वे अपने पति याज्ञिकप्रवर के लिये चरू पायस तथा यतिप्रवर शंकराचार्य के लिये भिक्षा लेकर उपस्थित होती थी।

विमर्श

आचार्य शंकर को उभयभारती की यह चुनौती पति पर विजय प्राप्ति के लिये नहीं, दम्पती पर विजय के लिये है, जो एक ओर भारत के सामाजिक फलक में परिवार को प्रतिष्ठित कर रहा है दूसरी ओर अद्वैत की अन्तर्दृष्टि को जीवनमूल्यों में पिरो रहा है। वैदिक मनीषा ने गृहस्थाश्रम के दो महान् स्तम्भों की ओर समाज का ध्यान खींचा है। उनके अनोखे तादत्म्य पर चिन्तन–अनुचिन्तन सतत प्रवाहित है। यद्यपि वे मूलतः अभिन्न है तथापि भिन्न बनकर एक दूसरे के पूरक है। इसलिये वेदों ने पति–पत्नी की उपमा द्यावा पृथ्वी के रूप में की है।

उभयभारती हार मानने वाली नहीं थीं। उन्होंने ज्ञानसमुद्र शंकर को चुप कराने का नया उपाय ढूंढ निकाला। उन्होंने विचार किया– चूंकि इन्होंने बाल्यकाल में आठ वर्ष की अवस्था में ही संन्यास ले लिया है, इसलिए निश्चय ही ये कामदेव की ललित लीलाओं से अपरिचित है। अतएव इस अजेय संन्यासी को जीतने के लिये कामशास्त्रविषयक प्रश्न पूछना होगा। इस गम्भीर विचारणा के फलस्वरूप उभयभारती ने इस प्रकार प्रश्न किया– संसार के सभी प्राणियों में जो काम–कला का स्पन्दन

होता है, उनकी संख्या कितनी बतलाई गई है? उसका स्वरूप क्या है? नारी के किन–किन अंगों में शुक्ल पक्ष में काम का वास होता है और किन–किन अंगों में कृष्णपक्ष में काम का वास होता है? पुरूष के किस अंग में मनोज से उत्पन्न उल्लास अभिव्यक्त होता है?

शास्त्रार्थ की मर्यादा का पालन करने के लिये यदि मैं शास्त्रीय अध्ययन को ही आधार बनाऊँ तो वह ज्ञान सूचना–मात्र–पर्यावसायी होगा। लोक में रचे–बसे काम का तब तक प्रत्यक्ष नही होगा जब तक अभानापादक अज्ञान बना रहेगा, तब तक इन प्रश्नों का ठीक–ठीक उत्तर नहीं हो पायेगा। अतएव शास्त्रार्थ में विजयी होने के लिये तटस्थावेन अनङ्गतत्त्व का साक्षात्कार करना आवश्यक है। शरीरान्तर द्वारा किये गये संभोग से जो काम का अनुभव होगा, उससे मेरा ब्रह्मचर्य खण्डित नही होगा।

आचार्य शंकर ने उभयभारती से कहा– हे विदुषी! तुमने सृष्टि के अनुकूल जो कुछ पूछा, उसे मैं राजा के शरीर के माध्यम से साक्षात् अनुभव करके पुनः इस वाद सभा में पहुंचा हूँ। संसार में व्याप्त प्राणियों को अतिशय आनन्द प्रदान करने वाला काम निश्चय ही दुर्जय है, उसको जीतना कठिन है– यह तत्त्वज्ञ विद्वानों ने भी समझा है।

यह आत्मा जैसी कामना से युक्त होता है उसी प्रकार का निश्चय करता है। जैसा निश्चय करता है वैसा कर्म करता है, जैसा कर्म करता है उसी का फल प्राप्त करता है। काम में ब्रह्म का आनन्दांश प्रतिबिम्बित है। भगवती श्रुति कह रही है वह वीर्य जिस स्त्री में जाता है उसके साथ आत्मभूत अर्थात् अभिन्न हो जाता है।

अविद्या से प्रेरित संसारी जीव का पिता से वीर्यरूप से पहला जन्म, उसी का कुमार रूप से माता से दूसरा जन्म तथा पिता के समान पुत्र का अपने अपने पुत्र का भार छोड़ कर पिता रूप दूसरा आत्मा कर्तव्य सम्पादन करके मृत्यु को प्राप्त होता है, पुनः अन्य देह को प्राप्त कर उत्पन्न होता है, यह तीसरा जन्म है।

पुरूषों के शरीर में सञ्चित अन्नजनित रस सर्वाङ्ग में संचार करता हुआ, क्रमशः रक्त, मांस, मज्जा, वीर्य और अन्त में ओजः स्वरूप होकर आभामण्डल के रूप में प्रकाशित होता है। काम से प्रेरित होकर विधिपूर्वक हवि के समान पुरूषों के द्वारा उस सौम्य का आग्नेय (स्त्री योनि) में प्राणियों के संसरण के लिये यत्नपूर्वक आधार किया जाता है।

कामशास्त्र का अध्ययन कर लोक चतुर पुरूष उत्तम गृहस्थभाव को प्राप्त करते है। वे आजीवन वैषयिक सुख के पीछे उसी प्रकार भागते रहते है जिस प्रकार मरूभूमि में मृग अपनी प्यास बुझाने का व्यर्थ प्रयत्न करता है। कामदेव के समस्त लीला व्यापा संकल्प की पृष्ठभूमि में थिरकते है जिसे प्राज्ञजनों ने अविद्या का विलास और जगत्प्रपंच के जनक के रूप में पहचाना है।

अविद्या–भ्रम के कारण सत्य और अनृत में मिथुनीभाव होता है। 'अतस्मिन् तदबुद्धिः' अध्यास है, वस्तुतः जो नहीं है, उसका वहां दिखाई देना– यही भ्रम का स्वरूप है। इससे प्रेरित होकर सत्य और अनृत का मिथुनीभाव चर और अचर की सृष्टि कर रहा है। उके राग में रंगकर अनेक कठिनाइयां झेलकर रातदिन परिश्रम करता है। उनमसे बढ़कर उसके लिए और कोई नहीं होता।

यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक प्रकृष्ट ज्ञान रूपी सूर्य का उदय नहीं होता। अविद्या के अंधकार से घिरा हुआ जीव पुत्र और पत्नी का स्मरण करते हुए व्याकुल रहता है। यह तादात्म्याध्यास इतना दृढ़ है कि एक के नष्ट होने पर वह

अपने को ही नष्ट समझता है और एक की उपलब्धि होने पर अपने को ही कृतार्थ समझता है। मोक्ष के इच्छुक जीवों के लिये ज्ञानरूप चतुर्थपुरूषार्थ मोक्ष ही प्राप्तव्य है। यह कामकला बन्धन में डालती है जबकि अद्वैत के इच्छुक साधक मुक्ति चाहते है, उनके लिये यह त्याज्य है।

अपने प्रश्नों का समुचित समाधान पाकर उभयभारती अभिभूत हो गई। उन्होंने शंकराचार्य को प्रमाण करते हुए कहा– हम दोनों पति–पत्नी आप के द्वार जीत लिये गये हैं। सर्वज्ञ, प्रतिभा के विलास से सुशोभित, सत्–चित् स्वरूप ज्ञान समुद्र शंकरावतार शंकराचार्य को जीते में कौन समर्थ है?

अन्त में यह कहा जा सकता है कि आदिशंकर का मण्डनमिश्र से जो शास्त्रार्थ हुआ वह धर्मपरक किंवा धर्मार्थपरक था, क्योंकि यागादिरूपधर्म के निष्पादन में जिस सामग्री की अपेक्षा है, उनमें अर्थ नाम पुरूषाथ गतार्थ है। उभयभारती के साथ आचार्य का कामपरक शास्त्रार्थ हुआ। लौकिक काम तो अर्थ रूपी पुरूषार्थ में गतार्थ है। उभयभारती का शास्त्रार्थ सृष्टि के ललित विलास का प्रतिपादन करते हुए तन्त्रशास्त्र की मूल अवधारणा के साथ प्रवर्तमान है। अतः इस शास्त्रार्थ को तृतीय पुरूषार्थ की कोटि में रखना उचित है। इस शास्त्रार्थ का निहितार्थ आगमनिगम उभयविध धाराओं की सहज समन्वयात्मक संगति में है।

6.5 सारांश

अभी तक आपने कुछ चुने हुए संवादों को पढ़ा। संवाद की परम्परा प्राचीन है और हमारे ऋषियों, तत्वेत्ताओं ने विषयों की स्पष्टता हेतु संवाद का ही आश्रय लिया है। ऋग्वेद, यजुर्वेद एवं अथर्ववेद, सात संवाद का ही आश्रय लिया है। ऋग्वेद, शांखायन, तैत्तिरीय, शतपथ, षड्विंश, जैमिनीयोपनिषद् एवं गोपथ ब्राह्मण में जो संवाद उपलब्ध हुए है।

संवाद का उद्देश्य अद्वैत एवं शान्ति स्थापित करना है। इसमें सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक और आत्मिक उन्नति का विकास है। यह उन्नति तभी सम्भव है जब पात्र संवाद के नियमों एवं सीमाओं का पालन करें। संवाद के लिए अनिवार्य सीमाएँ हैं– उदारता, जिज्ञासा, विश्वास, सम्मान सहनशीलता, पक्षपात हीनता, पहचान तथा अस्तित्व, सहयोग, मैत्रीभाव, शिष्टता सम्बन्ध, संवादात्मक उत्तरादायित्व, भाषा साम्य, विषय का ज्ञान एवं अकृत्रिमता है।

परन्तु यह आवश्यक नहीं कि एक ही संवाद में ये सभी तत्त्व पूर्णतः घटित हों। जहाँ पर विषय एक है और उसका निष्कर्ष है, पात्रों में मतैक्य है, संवाद वैमत्य से प्रारम्भ हो करके मतैक्य पर्यन्त पहुँचता है, पात्र जिस उद्देश्य को लेकर के संवाद करना चाहते हैं वह उद्देश्य पूर्ण हो रहा है और साथ ही संवादात्मक तत्त्वों का निर्वाह भी हो रहा है। ऐसे संवाद संवाद की सीमा में आते हैं।

आप कुछ महत्त्वपूर्ण संवादों को पढ़ चुके हैं। यहां उनके विषय में संक्षेप में अध्ययन करेंगे। संवाद दो व्यक्तियों, पात्रों, पक्षों, के मध्य किसी जिज्ञासा को लेकर एक बौद्धिक क्रियाकलाप है। संवाद सहानुभूतिपूर्ण परिवेश में दो पक्षकारों के मध्य ज्ञान–विनिमय का एक प्रक्रम है। भारतीय साहित्य तथा संस्थाओं के इतिहास संवादों से भरे पड़े हैं। ऋग्वेद से ही संवादों का प्राप्त होना प्रारम्भ होता है तथा उपनिषद्, महाकाव्य, पुराण एवं अन्य साहित्य में हमें प्राप्त होते हैं। संवाद के प्रमुख रूप से तीन विषय होते हैं। साधारण जिज्ञासा, विशेष जिज्ञासा तथा पूर्वाग्रहपूर्वक जिज्ञासा। उपलब्ध

संवादों का अध्ययन करने पर हमें प्रमुख रूप से देवताओं के मध्य पारस्परिक संवाद देवता तथा स्त्रोतागणों के मध्य संवाद देवों और मनुष्यों के मध्य संवाद, देवता–मनुष्यों तथा पशुओं के मध्य संवाद आचार्य तथा शिष्यों के मध्य संवाद आदि प्राप्त होते है। इन सभी संवादों में हमें किसी विशेष विषय पर विचार विमर्श प्राप्त होता है। यह विमर्श, धार्मिक, सामाजिक, राजनैतिक, दार्शनिक अथवा आर्थिक किसी भी विषय पर होता है। कुछ संवाद प्रत्यक्ष रूप से परोक्ष है तथ्ज्ञा आहिक अभिनय द्वारा संवाद प्राप्त है। संवाद में जिज्ञासा, संवाद के प्रति उत्तरदायित्व, भाषाज्ञान, सहानुभूति प्रमुख तत्त्व है। सरमा–पाणि संवाद से हमें अज्ञात वस्तु के खोज की विधि का ज्ञान प्राप्त होता है। साथ ही यह भी ज्ञात होता है क दूत के क्या गुण होने चाहिए। यम–यमी संवाद एक पक्ष के कामातुर होने पर दूसरे पक्ष द्वारा मर्यादा पालन पर आधारित है। यह संवाद किसी भी स्थिति में अमर्यादित व्यवहार की अनुमति नहीं देता। यम–नचिकेता संवाद एक साथ ही सामाजिक उत्तरदायित्व तथा आध्यात्मिक उपलब्धि की प्राप्ति के प्रति दृढ़ता का सन्देश देता है। याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद एक दम्पत्ति के मध्य संवाद है जिससे हमें यह ज्ञात होता है कि पति–पत्नी का सम्बन्ध लौकिक होते हुए भी परलौलिक उपलब्धि को प्राप्त करने के लिये ही विकसित होता है।

6.6 पारिभाषिक शब्दावली

सदर्भ : वैदिक साहित्य मे संवाद:सैद्धांतिक एव प्रायोगिक विश्लेषण, डा उषा किरण नाग पब्लिशर्स 2005

वैदिक आख्यान: डा गंगासागर राय, चौतरफा,वाराणासी2017

6.6 सन्दर्भग्रन्थ

1. कठोपनिषद्, प्रथम अध्याय, डॉ. राजदेव मिश्र तथा डॉ. शिवबालक द्विवेदी, घनश्याम दास एण्ड सन्स, चौक, फैजाबाद
2. बृहदारण्यकोपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर
3. संस्कृत साहित्य में नीतिकथा का उद्गम एवं विकास, डॉ. प्रभाकर नारायण कवठेकर, चौखम्बा प्रकाशन, दिल्ली
4. वैदिक साहित्य में संवाद : सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक विश्लेषण, डॉ. उषा किरण, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली

6.7 बोध प्रश्न

1. ऋग्वेद में वर्णित शर्मापाणी को अपने शब्दों में लिखिए।
2. यम–नचिकेता संवाद में निहित सांस्कृतिक तत्त्व पर प्रकाश डालिए।
3. नागसेन मीनांडर संवाद दो संस्कृतियों के मध्य प्रथम संवाद है, इस कथन पर प्रकाश डालिए।
4. याज्ञवल्क्य मैत्रयी संवाद को स्त्री गरिमा और स्त्री स्वातन्त्रय को सशक्त उदाहरण के रूप में विवेचित कीजिए।